मुक्ति किसकी

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,
पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

मुक्ति का अर्थ है बंधन से छुटकारा पाना। बंधन दुखदायी होता है। पिंपरे में बन्द हुआ तोता परतंत्र रहता है। जैसे ही मौका मिलता है वह पिंजरे से उड़ जाता है। शरीर और आत्मा का संयोग बंधन है। मन, वचन और काया की सम्पूर्ण प्रवृत्ति आत्मा की हाजिरी से होती है। शरीर अकेला कुछ नहीं कर सकता। आत्मा में शक्ति होते हुए भी वह अकर्ता है। चेतना शरीर के संयोग से कार्य करती है। शरीर का और चेतना का कार्य अलग–अलग है। किन्तु जब मैं कर्ता हूं यह भाव आ जाता है तो बंधन यहीं से प्रारम्भ हो जाता है। रस्सी से बंधे हुए व्यक्ति को छोड़ देने से रस्सी भी मुक्त हो जाती है और मनुष्य भी। आत्मा भिन्न है और शरीर भिन्न है। बंधन जन्म जन्मान्तर के कर्मों का परिणाम है। बंधन कार्मण शरीर का होता है। कार्मण शरीर एक जन्म से दूसरे जन्म में कर्मों के कारण गमनागमन करता है। इसे ही मुक्त करना है। शरीर गलन मिलन धर्मा है। इसमें शैशवावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था आती है। वृद्धावस्था के बाद शरीर जीर्ण शीर्ण हो जाता है। आयुष्य कर्म पूरा होने पर शरीर देहान्तर को प्राप्त हो जाता है।

दार्शनिक दृष्टि से यदि हम चिंतन करे तो बंधन और मुक्ति जीव के लिए है। जिनसे कर्म बंधे या कर्मों का बंधना बन्ध है। जो बंधे या जिसके द्वारा बांधा जाये या बन्धन मात्र को बन्ध कहते हैं। कषाय सहित होने से जीव कर्म के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है, वह बन्ध हैं। कर्म प्रदेशों का आत्मप्रदेशों में एक क्षेत्रावगाह हो जाना बन्ध है। मिथ्यादर्शनादि द्वारों से आए हुए कर्म पुद्गलों का आत्मप्रदेशों में एक क्षेत्रावगाह हो जाना बन्ध है। जैसे बेड़ी आदि से बंधा हुआ प्राणी परतन्त्र हो जाता है और इच्छानुसार देशादि में नहीं आ–जा सकता, उसी प्रकार कर्मबद्ध आत्मा परतन्त्र होकर अपना इष्ट विकास नहीं कर पाता। अनेक प्रकार के शरीर और

मानस दुःखों से दुःखी होता है। राग–द्वेषादि के निमित्त से जीव के साथ पौद्गलिक कर्मो का बन्ध निरन्तर होता है।

जीव के भावों की विचित्रता के अनुसार वे कर्म भी विभिन्न प्रकार की फलदान शक्ति को लेकर आते हैं, इसी से वे विभिन्न स्वभाव या प्रकृति वाले होते हैं। प्रकृति का अर्थ स्वभाव है। जिस प्रकार नीम की क्या प्रकृति है? कडुआपन। गुड़ की क्या प्रकृति है? मीठापन। उसी प्रकार ज्ञानावरण कर्म की क्या प्रकृति है? अर्थ का ज्ञान न होना इत्यादि। जीव के प्रदेशों की उथल–पुथल को अस्थिति तथा उथल–पुथल न होने को स्थिति कहते हैं। जिसका जो स्वभाव है, उससे च्युत न होना स्थिति है। जिस प्रकार बकरी, गाय और भैंस आदि के दूध का माधुर्य स्वभाव से च्युत न होना स्थिति है, उसी प्रकार ज्ञानावरण आदि कर्मो का अर्थ का ज्ञान न होने देना आदि स्वभाव से च्युत न होना स्थिति है। विविध प्रकार के पाक अर्थात् फल देने की शक्ति का पड़ना ही अनुभव है। शुभाशुभ कर्म की निर्जरा के समय सुख–दुःख रूप फल देने की शक्ति वाला अनुभाग बन्ध है। कर्म रूप से परिणत पुद्गल स्कन्धों का परमाणुओं की जानकारी करके निश्चय करना प्रदेशबन्ध है।

दो के बिना बन्ध नहीं होता। एक हाथ से ताली जिस प्रकार नहीं बज सकती, उसी प्रकार बन्ध तत्त्व भी एक के बीच में नहीं हो सकता। सांसारिक जो विषय–सामग्री है, वह और उसका जो भोक्ता है आत्मा ये दोनों संयोग होते ही बन्ध हो जाते हैं। कर्म पुद्गलों के ग्रहण को बन्ध कहा जाता है। जीव के द्वारा कर्म पुद्गलों का ग्रहण क्षीर–नीर की भांति परस्पर आश्लेष होता है, उसे बन्ध कहा जाता है। वह प्रवाहरूप से अनादि और जो भिन्न–भिन्न कर्म बंधते रहते हैं, उनकी अपेक्षा सादि है। मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और मन, वचन, काय की प्रवृत्ति ये सब कर्मों के आने के द्वार होने से आस्रव हैं। इनसे विपरीत सम्यक्त्व, देशव्रत, महाव्रत, मोह व कषायहीन शुद्धात्म परिणति तथा मन, वचन, काय के व्यापार की निवृत्ति ये सब नवीन कर्मों के निरोध के हेतु होने से संवर हैं। आसव्र का निरोध करना ही संवर है। जिनसे कर्म रुकें, वह कर्मों का रुकना संवर है। नगर के द्वार अच्छी तरह बन्द हों, वह नगर शत्रुओं को अगम्य है। जीव का चरम और परम लक्ष्य है– मोक्ष प्राप्ति। जिसने समस्त कर्मों का

क्षय करके अपने साध्य को सिद्ध कर सफलता प्राप्त कर ली वह मोक्ष का अधिकारी है। बन्ध हेतुओं मिथ्यात्व व कषाय आदि के अभाव और निर्जरा से सब कर्मो का आत्यन्तिक क्षय होना ही मोक्ष है। कर्मों का पूर्ण रूप से छूटना मोक्ष है।

सम्यग् दर्शनादि कारणों से सम्पूर्ण कर्मों का आत्यान्तिक मूलोच्छेद होना मोक्ष है। जिस प्रकार बन्धन युक्त प्राणी स्वतन्त्र होकर यथेच्छ गमन करता है, उसी तरह कर्म–बन्धन मुक्त आत्मा स्वाधीन हो अपने अनन्त ज्ञानदर्शन सुख आदि का अनुभव करता है। मनुष्य गति से ही जीव को मोक्ष होना संभव है। आयु के अन्त में उसका शरीर कपूरवत उड़ जाता है और वह स्वाभाविक ऊर्ध्व गति के कारण लोक शिखर पर जा विराजता है, जहाँ वह अनन्तकाल तक अनन्त अतीन्द्रिय सुख का उपभोग करते हुए अपने चरम शरीर के आकार रूप से स्थित रहता है और पुनः शरीर धारण करके जन्म–मरण के चक्कर में कभी नहीं पड़ता। ज्ञान ही उनका शरीर होता है।